THE TIMES OF INDIA Date: 20-06-26

Mourn The Fallen One

Ancient trees are closest to 'permanence' humans know

TOI Editorials

An old tree dies. Grief arrives. The ancient oak that, according to folklore, sheltered Robin Hood in England's Sherwood Forest, has fallen. Why should that even be news? Yet it is – not just for conservationists, but for all of us. The news carries a sadness that's neither a personal hit nor the grief of losing a loved one. It is a quieter sorrow that touches something older – perhaps from connections that predate society itself.

When an old tree dies, it takes so much with it. An ancient tree has witnessed more history than books in a library combined. Every ring in its trunk is history drawing a line: of fires and floods and lightning strikes; perhaps even wars fought in the neighbourhood, of kingdoms risen and fallen. It is enduring shelter, its hollows housed creatures great and small – some, perhaps, extinct today. All that memory. All those stories. Unindexed, unknowable. Yet we know the tree has seen it all. Unmoving, doing nothing more remarkable than remaining alive for centuries.

To mourn their fall is but natural, for they are perhaps the closest things to permanence humans know. To mourn them is recognition that we are but mortal creatures who, for a moment, found something that seemed to reach beyond mortality – only to discover that the Great Oak, too, could fall. We are, in the end, creatures of the forest all.

THE ECONOMIC TIMES Date: 20-06-26

Avoiding 'Munich' After Versailles?

New world order confirmed by US loss

ET Editorials

This is not Winston Churchill that we're dealing with. Thus spake Donald Trump about Keir Starmer in March after the Brit PM refused to allow bases for US-Israel strikes on Iran. Three months on, after signing the 'new Treaty of Versailles' — the 14-pt MoU earlier signed by Trump's Iranian counterpart Masoud Pezeshkian — on Wednesday, the non-descriptor certainly applies to the US president.

Never mind Winston, Trump's not much of a (Woodrow) Wilson either. The 28th US president (unsuccessfully) championed multilateralism and 'peace without victory' in 14 points advocating for a 'peace without victory' in 1918 to end WW1. The 47th US president is just keen to come across as winner in the US-Iran sweepstakes, even though facts suggest anything but that. The abrupt cancellation of start to Iran-US negotiations — No. 13 in the MoU — scheduled at Obbürgen, Switzerland, on Friday, was ostensibly because Hezbollah and Israel — neither party to US-Iran peace plans — traded attacks in Lebanon. But the real reason may lie elsewhere. Someone in his team may have reminded Trump of the 1938 Munich Agreement. There, another Brit PM, Neville Chamberlain, had waved a piece of paper and declared 'peace for our time' — only to be remembered for appeasing Hitler. A comparison with Chamberlain wouldn't have looked good before negotiations with Iran — or midterms with Americans.

Whichever way one spins it, Iran has come out on top in the war. The US is no longer even looking the global policeman many, non-Americans included, desperately hoped it still was. Multipolarity looks like the new 'law and order' in town. So, the US' diminished role shouldn't be seen as the end of world order but a new shuffle of cards — where 'folding' may not always be a smart option any more.

दैनिक भास्कर

Date: 20-06-26

यूएस-ईरान डील के बाद हमारे लिए नए अवसर खुले

संपादकीय

भारत के पास दो असाधारण क्षमताएं है- तेल के शोधन में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में बेहतरीन रिफाइनरीज और जबरदस्त स्टोरेज क्षमता । ईरान और खाड़ी के अन्य तेल उत्पादक देश अपेक्षाकृत हमारे नजदीक हैं, लिहाजा भाड़ा भी कम लगता है। अधिक सल्फर के कारण वहां का तेल हमें सस्ता भी पड़ता है। इस तेल को परिष्कृत करने की क्षमता भारत को एशिया और यूरोपियन बाजार में अपेक्षाकृत वाणिज्यिक लाभ देती है। यह सच है कि यूरोप में एविएशन ईंधन के शोधन की गुणवत्ता को लेकर सख्त मानदंड हैं लेकिन वह भारत के लिए चिंता का विषय नहीं है। क्रूड कहां से आया है, इस पर भी यूरोप का रुख कड़ा है लेकिन खाड़ी के देशों को लेकर वह तुलनात्मक रूप से उदार है। लिहाजा यूएस-ईरान के बीच एमओयू के बाद भारत के लिए एक बड़ा मौका है, विश्व पटल पर शोधित तेल का बड़ा निर्यातक बनने का । वेनेजुएला के लोग्रेड क्रूड को लेकर भी कमोबेश यही स्थिति है, लेकिन उसकी भौतिक दूरी इस सौदे के खिलाफ जाती है। यह समय है कि ट्रम्प भारत जैसे बड़े उपभोक्ता देश को साथ लें और अपने ट्रेड को फिर से नया आयाम दें। न भूलें कि उभरती मिडिल इकॉनमी वाला भारत में

दुनिया की सबसे बड़ी आबादी है। यही कारण है कि तेल शोधन के बाद भी निर्यात के लिए भारत के पास तेल कम ही बच पाता है। फिर भी हमें यह अवसर नहीं चूकना चाहिए।

Date: 20-06-26

अमेरिका एडवांस्ड एआई तकनीक को दुनिया तक पहुंचने से रोक रहा, मजबूरी में चीन की ओर जा सकते हैं कई देश

अमेरिका की ताकत सिर्फ सैन्य या आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि अब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) पर उसका नियंत्रण भी वैश्विक प्रभाव का बड़ा जरिया बनता जा रहा है। हयलिया घटनाक्रम ने यह दिखाया है कि अमेरिकी सरकार सबसे एडवांस्ड एआई तकनीकों तक दुनिया की पहुंच को नियंत्रित करने की स्थिति में है।

12 जून को राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प प्रशासन ने एआई कंपनी एंथ्रोपिक के सबसे एडवांस्ड मॉडल 'फैबल' और 'मायथोस' तक विदेशी नागरिकों की चुका है। विशेषज्ञों का मानना है कि फ्रंटियर एआई मॉडल भविष्य में महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुंचाने, महामारी फैलाने वाले जीवाणुओं या परमाणु हथियारों के विकास में मदद कर सकते हैं। इसलिए अमेरिका संभवतः सबसे एडवांस्ड क्षमताओं को अपने पास सुरक्षित रखेगा, सहयोगी देशों को सीमित पहुंच देगा और बाकी दुनिया को अपेक्षाकृत कमजोर मॉडल उपलब्ध कराएगा। हालांकि इस रणनीति की कीमत भी चुकानी पड़ सकती है।

एंथोपिक के कई कर्मचारी अमेरिकी नहीं हैं और प्रतिबंध से प्रभावित हुए हैं। इसके अलावा वैश्विक प्रतिभाओं और बाजारों से दूरी अमेरिका की एआई बढ़त को कमजोर कर सकती है। दूसरी ओर, अमेरिकी सहयोगी देश भी एआई के मामले में बढ़ती निर्भरता को लेकर चिंतित हैं। वे व्यापार, गठबंधनों, डॉलर सिस्टम और कई अन्य कारणों से ट्रम्प के सामने कमजोर स्थिति में हैं। अब इनमें एआई सबसे अहम कारण हो सकता है। हालांकि अमेरिका खुद डच चिप-निर्माण तकनीक और ताइवानी सेमीकंडक्टर उद्योग पर निर्भर है ऐसे में विदेशी अपने अच्छे विकल्प एंथ्रोपिक के लिए सीमित कर सकते हैं।

रोक से चीन को हो सकता है फायदा

- एंथ्रोपिक के नए एआई मॉडलों पर अमेरिकी पाबंदी का दूर तक असर
- इससे एआई कंपनियों के अलावा यूजरों को नुकसान
- प्रतिबंध से बाकी देश चीन के पास जा सकते हैं।
- अमेरिकी कंपनियों को नुकसान उठाना पड़ेगा।

• अमेरिका को मशीनों और चिप्स के लिए दूसरे देशों की जरूरत ।
• अन्य देशों की एआई के लिए कंप्यूटिंग पावर बढ़ाने में दिलचस्पी नहीं।

यूरोप से 15 गुना है कंप्यूटिंग पॉवर

एआई मॉडल चलाने के लिए कंप्यूटिंग पॉवर की जरूरत होती है, जो अमेरिका के पास यूरोप से 15 गुना ज्यादा है। कंप्यूटिंग की कमी के बावजूद देशों ने डेटा सेंटरों के निर्माण में दिलचस्पी नहीं दिखाई है।

एंथ्रोपिक को होगा भारी नुकसान

एंब्रोपिक का कहना है कि उसके 80% कंज्यूमर विदेशी हैं। पिछले दशक में अमेरिका को यूरोप से इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोडक्ट्स के लिए धन के भुगतान में पांच गुना बढ़ोतरी हुई है। इस रोक से यह कारोबार प्रभावित हो सकता है।

पहले भी टेक्नोलॉजी पर रोक लगा चुका है

यूएस उभरती टेक्नोलॉजी पर पाबंदी लगाता रहा है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन के परमाणु हथियार कार्यक्रम में मदद बंद कर दी थी। 70 के दशक में जब क्रिप्टोलॉजी आई तब पहले उसने निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया।

दैनिक जागरण

Date: 20-06-26

बिना फुटपाथ की सड़कें

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट का यह कहना सराहनीय और स्वागतयोग्य है कि फुटपाथ पर पैदल चलने वालों का पहला अधिकार है। उसने इस अधिकार को मौलिक अधिकार बताते हुए यह भी स्पष्ट किया कि सड़कों पर वाहनों की आवाजाही से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है कि पैदल यात्री फुटपाथ पर बिना किसी बाधा के चल सकें। यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में सरकारों को यह भी याद दिलाया कि यह एक ऐसा अधिकार है, जिसे लागू किया जा सकता है। आखिर फुटपाथ होते ही इसलिए हैं कि लोग उन पर चल सकें, लेकिन अन्य देशों और

विशेष रूप से विकसित एवं साथ ही कई विकासशील देशों की तुलना में हमारे यहां फुटपाथ बड़े पैमाने पर अतिक्रमण का शिकार हैं। कहीं-कहीं तो वे अतिक्रमण के चलते गायब ही हो गए हैं। अपने देश में फुटपाथों पर पैदल चलना इसलिए दूभर है, क्योंकि वे सही तरह सीमांकित नहीं हैं और यदि कहीं हैं भी तो कोई उसकी परवाह नहीं करता। कहीं रेहड़ी-पटरी वालों ने उन पर कब्जा कर लिया है तो कहीं दुकानदारों ने। यदि कहीं वे अतिक्रमण से मुक्त हैं तो भी उनमें वाहन खड़े नजर आते हैं या फिर दुकानों के साइनबोर्ड दिखते हैं।

वास्तव में अपने यहां फुटपाथों पर पैदल चलने की सुविधा के अलावा वह सब होता है, जो नहीं होना चाहिए। इसका ही नतीजा है कि आम तौर पर लोग सड़क किनारे चलने के लिए विवश होते हैं और दुर्घटनाओं की चपेट में आते हैं। इन दुर्घटनाओं में प्रतिवर्ष हजारों लोगों की मौत होती है। सुप्रीम कोर्ट का उक्त फैसला एक मोटर दुर्घटना मुआवजे के मामले से जुड़ा है, जिसमें एक पांच वर्षीय बच्चे की मौत इसलिए हो गई थी, क्योंकि वह जिस सड़क से जा रहा था, उस पर कोई फुटपाथ नहीं था। इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं हो सकती कि सुप्रीम कोर्ट को शासन-प्रशासन को छोटी-छोटी बातें याद दिलाने के साथ इसके लिए निर्देश भी देने पड़ते हैं कि उसे अपने बुनियादी काम करने चाहिए। कायदे से तो सुप्रीम कोर्ट को यह कहने कि आवश्यकता ही नहीं पड़नी चाहिए थी कि फुटपाथ लोगों के चलने के लिए हैं और इसमें कोई बाधा नहीं आनी चाहिए, लेकिन उसे यह काम भी करना पड़ा। इसके प्रति तो उन्हें बिना किसी के कहे सचेत रहना चाहिए था, जिन पर फुटपाथों के रखरखाव और यह देखने की जिम्मेदारी है कि उन पर किसी तरह का अतिक्रमण न होने पाए। समस्या यह है कि ऐसे लोग अपनी जिम्मेदारी के प्रति तनिक भी सजग नहीं-चाहे वे नगर निकायों के अधिकारी-कर्मचारी हों या फिर यातायात पुलिस। इसके साथ ही हमारे नेतागण भी कभी इसकी चिंता नहीं करते कि उनके इलाकों में फुटपाथों पर चलना कठिन है। शायद इसलिए कि उन्हें फुटपाथ पर चलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फुटपाथों पर अतिक्रमण सबको दिखता है, लेकिन चेतता कोई नहीं।

Date: 20-06-26

छात्रों के हित में है त्रिभाषा फार्मूला

प्रो. निरंजन कुमार, (लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा समिति के अध्यक्ष और सीनियर प्रोफेसर हैं)

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम भर नहीं होती, इसका एक समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र भी होता है। खासतौर से जब भाषा का परिप्रेक्ष्य शिक्षा के संदर्भ में हो तो भाषा अपने समाजशास्त्र और आर्थिकी से आगे बढ़कर राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया से भी जुड़ जाती है। पिछले दिनों देश में सीबीएसई के स्कूलों में त्रिभाषा फार्मूले को लागू करने की

योजना की घोषणा को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। यह अलग बात है कि इस मुद्दे पर पूरे देश में एक विवाद खड़ा कर दिया गया है। यह संतोषजनक है कि सुप्रीम कोर्ट ने सरकार के निर्णय पर रोक नहीं लगाई।

भारत के प्रमुख स्कूली शिक्षा बोर्ड 'केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड' (सीबीएसई) ने हाल में निर्णय लिया कि अकादमिक सत्र 2026-2027 से छठी और नवीं कक्षा से त्रिभाषा सूत्र को लागू किया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र की अनुशंसा है। इसके अनुसार स्कूली स्तर पर तीन भाषाएं पढ़ाई जाएंगी, जिसमें कम से कम दो भारतीय भाषाएं होंगी। पहले भी एनईपी 1968 और एनईपी 1986 आदि में थोड़े से भिन्न रूप में त्रिभाषा फार्मूला अपनाया गया था। एकाध को छोड़कर सभी राज्यों ने त्रिभाषा सूत्र को लागू किया, लेकिन दुर्भाग्य से सीबीएसई ने त्रिभाषा फार्मूले को आंशिक रूप से ही स्वीकारा था। सीबीएसई स्कूलों में छठी से आठवीं तक त्रिभाषा सूत्र लागू तो था, लेकिन तीसरी भाषा के तौर पर विदेशी भाषाओं की भी छूट थी, फिर नवीं और दसवीं में तो सीबीएसई ने सिर्फ द्विभाषा नीति ही अपनाई थी। उसमें भी छूट यहां तक कि स्कूल चाहें तो दोनों ही भाषाएं कोई गैर-भारतीय भाषा हो सकती थीं। इसका दुष्परिणाम हुआ कि महंगे पब्लिक स्कूलों में भारतीय भाषाओं को उपेक्षित किया जाने लगा। सीबीएसई की इन नीतियों से कई विसंगतियां पैदा हो गई थीं।

सीबीएसई एवं राज्य बोर्डों के विद्यार्थियों में भाषा शिक्षण में असंतुलन की स्थिति बन गई थी। वर्तमान योजना का उद्देश्य देशभर में स्कूली शिक्षा में समानता एवं भाषाई एकरूपता स्थापित करना है। दूसरे, नवीं और दसवीं में जब बच्चों का व्यक्तित्व आकार लेना शुरू करता है, उस समय केवल विदेशी भाषाओं तक सीमित रह जाना, बच्चों को अपनी भारतीय संस्कृति से दूर करना है। भाषा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का भी संचार करती है। आज बच्चों में त्याग, सेवा, सहिष्णुता, सामूहिकता, परिवार-भाव, बड़ों के प्रति आदर जैसे भारतीय मूल्यों का लोप हो रहा है। एनईपी 2020 का त्रिभाषा सूत्र बच्चों में क्षीण हो रहे इन भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करेगा। सीबीएसई के बच्चों को भी बहुभाषिकता की शक्ति का लाभ मिलेगा। साइको-लिंग्विस्टिक रिसर्च बताती हैं कि बच्चों में अनेक भाषाएं सीखने की सहज और असीम क्षमता होती है। एक से अधिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान बच्चों में भारतीय भौगोलिक-सांस्कृतिक समझ को समृद्ध करेगा। इससे राष्ट्रीय एकता के भाव को मजबूती मिलेगी और विभाजनकारी भाषाई राजनीति कमजोर होगी।

विरोधियों द्वारा फैलाई जा रही सूचनाएं तथ्यहीन एवं भ्रामक हैं। विरोध का एक कारण अंग्रेजी-शिक्षित आभिजात्य वर्ग की औपनिवेशिक दौर की 'मैकाले मानसिकता' भी है। एक अध्ययन के अनुसार तीसरी भाषा के रूप में विदेशी भाषाओं की पढ़ाई केवल एक प्रतिशत शहरी विद्यार्थी ही कर रहे हैं। भारतीय भाषाओं के अध्ययन की अनिवार्यता का विरोध इन्हीं के आभिजात्य अभिभावकों द्वारा किया जा रहा है। नए दिशानिर्देशों के विरोध में ये लोग भाषा शिक्षकों की कमी, पाठ्यपुस्तकों का अभाव, छात्रों पर अतिरिक्त बोझ और तनाव, पहले से विदेशी भाषाओं का अध्ययन कर रहे छात्रों की असुविधा आदि तर्क दे रहे हैं। ध्यान रहे कि सीबीएसई/एनसीईआरटी द्वारा कक्षा छह के लिए सभी 22 अनुसूचित भाषाओं में पाठ्यपुस्तकें लगभग तैयार हैं। नवीं कक्षा में त्रिभाषा नीति 1 जुलाई, 2026 से लागू होगी। इसके लिए 19 अनुसूचित भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें शीघ्र उपलब्ध कराई जाएंगी। अन्य भारतीय

भाषाओं के लिए इस वर्ष एनसीईआरटी की पुस्तकों का उपयोग कर सकेंगे। शिक्षकों के लिए नए अतिथि शिक्षकों की नियुक्ति से लेकर आनलाइन पद्धति में अन्य स्कूलों से सहयोग कर शिक्षण कार्य असंभव नहीं। केवल एक और भारतीय भाषा की पढ़ाई को अतिरिक्त बोझ बताना, सही समझ का अभाव है।

विभिन्न राज्यों में पहले से ही तीन भाषाएं पढ़ाई जा रही हैं। पहले से विदेशी भाषाएं पढ़ रहे छात्रों की सुविधा के लिए वर्तमान में तीसरी भाषा का पाठ्यक्रम हल्का रखा जाएगा। तीसरी भाषा के लिए यह छूट भी है कि दसवीं में इसकी बोर्ड परीक्षा नहीं होगी। यही नहीं, कोई छात्र अंग्रेजी के अलावा कोई दूसरी विदेशी भाषा भी सीखना चाहे तो इसका भी अवसर प्राप्त होगा। बड़े सुधारों में प्रारंभ में कुछ चुनौतियां आना स्वाभाविक हैं, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि त्रिभाषा नीति को सही रूप से लागू करना देश और बच्चों, दोनों के हित में है।

जनसत्ता

Date: 20-06-26

जोखिम में बच्चे

संपादकीय

सरकार के तमाम दावों के बावजूद देश में बाल तस्करी पर अंकुश नहीं लग पा रहा है। इसका जाल देश के भीतर ही नहीं, बल्कि सीमा पार तक फैला हुआ है। विभिन्न राज्यों में सक्रिय गिरोह छोटे बच्चों से लेकर नवजात शिशुओं का अपहरण करते हैं और बाद में उनकी खरीद-फरोख्त की जाती है। हैरत इस बात की है कि इन आपराधिक गतिविधियों में ऐसे लोगों के नाम भी सामने आ रहे हैं, जो लोगों का जीवन बचाने के पेशे से जुड़े हुए हैं। दिल्ली में गुरुवार को बाल तस्करी करने वाले एक अंतरराज्यीय गिरोह का पर्दाफाश होना बड़ी सांठगांठ की ओर इशारा करता है। पुलिस का दावा है कि इस गिरोह में एक चिकित्सक एवं अस्पताल का मालिक भी शामिल है, जो निःसंतान दंपतियों में से संभावित खरीदारों की पहचान करता था। अगर देश की राजधानी के किसी अस्पताल में ही इस तरह की आपराधिक गतिविधियों को अंजाम दिया जा रहा है, तो दूसरे शहरों में कानून व्यवस्था की स्थिति क्या होगी, इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

सवाल है कि मानव तस्करी के खिलाफ सख्त कानून के बावजूद इससे जुड़े गिरोह आसानी से बच्चों का अपहरण कर उनकी खरीद-फरोख्त कैसे करते हैं? इसमें दोराय नहीं कि यह पुलिस व्यवस्था और निगरानी तंत्र की लापरवाही

और कर्तव्य में कोताही का ही नतीजा है। दिल्ली पुलिस ने बाल तस्करी में जिन तेरह आरोपियों को गिरफ्तार किया है, वे काफी समय से विभिन्न राज्यों में सक्रिय थे। वे बच्चों का अपहरण कर उन्हें दिल्ली लाते थे और यहां एक निजी अस्पताल में उन्हें रखा जाता था। पुलिस के मुताबिक, यह गिरोह पिछले डेढ़ साल में तीस से अधिक बच्चों को बेच चुका है। सवाल यह भी कि पुलिस को इस गिरोह की भनक पहले क्यों नहीं लग पाई ? क्या पुलिस का निगरानी एवं खुफिया तंत्र इतना कमजोर है कि उसे अस्पताल जैसे सार्वजनिक संस्थानों में चल रही आपराधिक गतिविधियों की भी जानकारी नहीं मिल पाती है? जाहिर है कि जब तक पुलिस प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त और जवाबदेह नहीं बनाया जाएगा, तब तक किसी भी तरह के अपराध पर अंकुश नहीं लग पाएगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 20-06-26

अकेला पड़ता इजरायल

संपादकीय

अमेरिका और ईरान के बीच युद्ध रोकने पर बनी सहमति का जहां दुनिया के ज्यादातर देश स्वागत कर रहे हैं, वहीं इजरायल की चिंता छिप नहीं रही है। अफसोस, युद्ध के अंत पर सहमति के बावजूद इजरायल ने लेबनान को निशाना बनाया। इससे कई सवाल खड़े हो गए। क्या युद्ध की समाप्ति के लिए इजरायल वाकई मन से राजी हो सका है? क्या वह फिर लेबनान को निशाना नहीं बनाएगा? ध्यान देने की बात है कि अभी सिर्फ सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए हैं, शांति-समझौते को दो महीने में अंतिम रूप दिया जाना है। वैसे, खुद अमेरिका में ताजा सहमति पर आपत्ति जताई जा रही है। सहमति को अमेरिका के प्रतिकूल माना जा रहा है और इसकी चिंता अमेरिकी नेतृत्व से ज्यादा इजरायली नेतृत्व को है। सहमति पत्र पर दस्तखत के बाद ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला मोजतबा खामेनेई भी सक्रिय हो गए हैं और वह आगे अमेरिका से सीधी बातचीत के इच्छुक दिख रहे हैं।

दुनिया देख रही है, इस सहमति से ईरानी नेतृत्व प्रसन्न है। तेहरान नहीं चाहेगा कि अमेरिका ताजा सहमति से पीछे हटे। एक ओर, ईरान अपने परमाणु कार्यक्रम को बनाए रखने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा देगा, तो दूसरी ओर, वह चाहेगा कि उसे अपने पुनर्निर्माण के लिए वादे के मुताबिक, 300 अरब डॉलर जल्द से जल्द मिल जाएं। इन दोनों मुद्दों पर अमेरिका और ईरान के बीच बनी सहमति पर इजरायल में चिंता बहुत हद तक जायज है। ईरान के पुनर्निर्माण के मायने इजरायल के लिए बिल्कुल अलग हैं। ईरान परंपरागत रूप से हिजबुल्लाह जैसे हिंसक संगठनों का पैरोकार रहा है और हिजबुल्लाह से इजरायल की अदावत बहुत पुरानी है। सहमति अमेरिका-ईरान के बीच बनी है। इजरायल-ईरान या इजरायल-हिजबुल्लाह या इजरायल-हमास के बीच नहीं। आशंका है, ईरान के पुनर्निर्माण के साथ कहीं पश्चिम एशिया में इजरायल विरोधी आतंकी संगठनों का पुनर्निर्माण न होने

लगे। ईरान के लिए अमेरिका दूर है और इजरायल पास। ईरान की मिसाइलें अमेरिकी जमीन तक नहीं पहुंचतीं, पर इजरायल तक पहुंचती हैं। हिजबुल्लाह और ईरान के हमले में कम से कम 60 इजरायलियों की मौत हुई है। गौरतलब है, हिजबुल्लाह ही नहीं, हमास जैसे आतंकी संगठन को भी ईरान से मदद मिलती रही है। साल 2023 में 7 अक्तूबर को हमास ने जब हमला किया था, तब हजार से अधिक इजरायली मारे गए थे और अनेक बंधक बनाए गए थे।

बेशक, इजरायली आक्रामकता की निंदा होनी चाहिए, पर उसकी चिंता को पूरी तरह नजरंदाज करना नाइंसाफी होगी। हर समाज और देश की अपनी पीड़ा होती है, लेकिन हर बार हथियार उठा लेना हल नहीं है। यह बात इजरायल पर जितनी लागू होती है, उतनी ही उसके दुश्मनों पर भी। एक पहलू यह भी है कि पश्चिम एशिया में मजहबी बुनियाद पर एक बड़ा उम्मा खड़ा दिखता है और उसके रूबरू इजरायल अकेला नजर आता है। ताजा सहमति के बाद इजरायल फिर अकेला है और अमेरिकी उप-राष्ट्रपति जेडी वेंस ने इजरायली 'घबराहट' पर तीखा हमला बोला है। ईरान का विश्वास जीतना जरूरी है, पर इजरायल को आशंकाओं के साथ अकेला छोड़ देना, अपना सिर रेत में छिपा लेने के समान है। समय आ गया है, दुनिया में आतंकवाद की समस्या से पूरी ईमानदारी से निपटा जाए। खुद पश्चिम एशियाई मुल्कों को यह तय करना होगा कि वे आपस में आखिर कब तक लड़ेंगे? इन मुल्कों को अमेरिका और यूरोपीय देशों की खुशहाली से कुछ तो सीखना चाहिए।